ॐ के विरोध की मानसिकता

देवबंद ने अपना नया फतवा ‘ॐ’ के उच्चारण के विरुद्ध दिया है। यह फतवा दिलचस्प है, क्योंकि किसी मूल इस्लामी निर्देश के अनुरूप नहीं बैठता।‘ॐ’न तो कोई मूर्ति है, न कोई देव-वंदना, न राष्ट्र-भक्ति का गीत। यह केवल एक स्वर है, ध्वनि-मात्र। क्या इस्लाम को एक ध्वनि से भी खतरा महसूस होता है? देवबंद के मौलाना अबुल कासिम नोमानी ने मुसलमानों को ‘ॐ’ का उच्चारण न करने के लिए तर्क दिया कि चूँकि यह हिन्दू पूजा-पाठ का अंग होता है, इसलिए मुसलमान इस का उच्चारण न करें।

ऐसी बातों से इस्लामी प्रवक्ता अपने-आपको हास्यास्पद स्थिति में डाल रहे हैं और अपने मजहब को खुद इतना कमजोर, छुई-मुई दिखा रहे हैं जो किसी भी चीज से टूट सकता है! जो किसी भी बात का उत्तर बातों से देने में अक्षम है। इसीलिए केवल फतवा, मनाही, नकार, आपत्ति, धमकी, आदि देत है। यह ताकत नहीं, निर्बलता है – इसे समझने से मुसलमान कितने दिन बचेंगे?

बल्कि बुत-परस्ती यानी मूर्ति-पूजा के विरुद्ध फतवे भी बेकार हैं। भोपाल के मुफ्तियों ने स्कूलों में सामूहिक सूर्य नमस्कार के विरुद्ध फतवा दिया था। यह कह कर कि इस्लाम में किसी वस्तु या तस्वीर के सामने झुकने की इजाजत नहीं। सूर्य ठोस अस्तित्व है, जिसे नमस्कार करना कुफ्र हुआ। लेकिन याद रखें, इस्लाम का उसूल बुतशिकनी है। यानी बुत को तोड़ कर नष्ट कर डालना। तब इस्लाम के सिकन्दरों! सूर्य को नष्ट कीजिए। सूर्य को तोड़े बिना बुत-शिकनी का उसूल सदा पराजित रहेगा। सूर्य की पूजा होती है, तब सूर्य-नमस्कार के खिलाफ फतवे देने से क्या? जरा उस की शिकनी करके दिखाओ! सूर्य ‘काफिरों का भगवान’ तो है ही। बल्कि रोमन और फारसी लोग भी सूर्योपासक थे। वह सूर्य अरब से लेकर अफगानिस्तान तक हर कहीं आज भी चमक रहा है। तब सूर्य-विध्वंस न किया, तो किस बात के शिकनगर?

दरअसल, ‘ॐ’ के विरुद्ध फतवा पिछले तरह-तरह के फतवों की श्रृंखला में ही नई कड़ी है। इस से पहले वंदे मातरम गाने, भारत माता की जय बोलने, स्वामी रामदेव के योग-शिविरों में जाने, आदि के विरुद्ध भी फतवा दिया जा चुका है। यह तो केवल भारत के, वह भी हालिया उदाहरण हैं। पूरे इतिहास और पूरी दुनिया के मौलवियों, मुफ्तियों, अयातुल्लाओं के सारे फतवे जमा करें – और वास्तविक जीवन से मिलान करें, तो लगेगा कि इस्लाम या तो बहुत पहले सैद्धांतिक-व्यवहारिक रूप से हार चुका, या लगभग सारे मुसलमान काफिर हो चुके!

क्योंकि यदि वे फतवे सही हैं, तो व्यवहार में करोडों मुसलमान काफिरी में मशगूल हैं। चित्र बनाना,

पेंटिंग करना, फोटो खिंचवाना, संगीत बजाना-सुनना, पुरुषों का शेव करना, सूट पहनना, लड़कियों का स्कूल जाना, दफ्तरों में काम करना, बिना बुरके के या बिना किसी घरेलू मर्द के साथ के बाहर निकलना, यहाँ तक कि ऐसे देश में रहना भी जहाँ इस्लाम का शासन नहीं – यह सब इस्लाम-विरुद्ध है!

भारत में मौलाना अबुल कलाम आजाद ने सन 1919 में फतवा दिया था कि यहाँ के मुसलमानों को 'हिजरत' कर जाना चाहिए, क्योंकि शरीयत उन्हें किसी काफिर के राज में रहने की इजाजत नहीं देता। तब लाखों मुसलमानों ने आजाद के कहे अनुसार वह किया भी था...। उस के क्या नतीजे हुए, वह अलग कथा है। यहाँ इतना ही प्रासंगिक है कि उस इस्लामी सिद्धांत के मद्दे-नजर भारत के सारे मुसलमान इस्लाम-विरुद्ध कार्य कर रहे हैं।

उसी तरह, फिल्मों में काम करने वाले सारे मुसलमान कलाकार इस्लाम की तौहीन कर रहे हैं। गाने-बजाने वाले सभी मुस्लिम गायक, गायिकाएं, संगीतकार, फोटोग्राफर, आदि सीधे-सीधे कुफ्र करते रहे हैं। ये बातें हँसी की नहीं हैं। अयातुल्ला खुमैनी से लेकर आज के कितने ही मौलानाओं की यह पक्की राय है। इसलिए, यदि इस्लामी आदेश और वैसे फतवे लागू नहीं होते, तो इस का कारण इस्लामी रहनुमाओं के हाथ में पर्याप्त ताकत न होना है।

इसीलिए, दुनिया में कहीं भी, जब, जिस किसी इस्लामी नेता, संगठन के पास ताकत जमा होती है, वे उन्हीं फतवों को गंभीरता से लागू भी करते हैं। भारत में ही शाहबानो से लेकर गुड़िया, इमराना, जरीना, आदि अनगिन उदाहरण हैं, जिस में संविधान और मानवीयता को धता बताते हुए शरीयत लागू किया गया। अतः ताकत का तत्व ही केंद्रीय कारक है, जिस से फतवे लागू होना, और इस्लाम का बढ़ना या बचना जुड़ा है।

यही बात ध्यान रखने और विचार करने की है। इस्लामी किताबों पर माथा-पच्ची, या मीडिया-अकादमिक जगत में दिए जाते सुंदर वैचारिक तर्कों पर ध्यान देना खुद को बेवकूफ बनाना है। वे सारे तर्क धरे रह जाएंगे, जैसे ही किसी तालिबान या जमाते इस्लामी की ताकत बढ़ती है। इस प्रक्रिया को अफगानिस्तान ही नहीं, पाकिस्तान, बंगलादेश, भारत, इंग्लैंड, जर्मनी, आदि कहीं भी देखा जा सकता है।

इसीलिए, विचारणीय बात यही है। कि क्या इस्लाम के पास फतवे और धमकियों के सिवा भी कुछ है? या कभी था? जिसे वे पसंद नहीं करते, उस के विरुद्ध मनाही, धमकी और हिंसा के अलावा कभी कुछ नहीं सुना जाता। आज ही नहीं, बिलुकल आरंभ से इस्लाम का यही इतिहास है। खुद उस के आलिमों के गर्व-पूर्ण शब्दों में, 'कुरान और तलवार'। तलवार के अलावा किसी चीज से उस ने कभी भी, किसी को कायल किया हो, इस का उल्लेख पूरे इतिहास में कहीं नहीं है।

जिस प्रकार हिन्दू संत या विचारक किसी विषय पर तथ्य, प्रमाण और बुद्धि-विवेक से समझाते हैं, वैसा कभी इस्लामी आलिमों द्वारा नहीं किया जाता। सिवा यह कि 'इस्लाम में ये हराम है', वो 'मना है', इस की 'इजाजत नहीं', वह 'कुफ्र है'; उन के पास कोई संजीदा शब्द तक नहीं होते। इन से वे जब आगे बढ़ते हैं, तो यही जोड़ते हैं कि 'मार डालो', 'फाँसी दो', 'सिर उतार लो', आदि।

यही सदैव देखा जाता है। विषय कुछ हो, इस्लामी रहनुमाओं के पास हिंसा के अलावा कभी, कोई तर्क नहीं होता। यह किसी एक देश के उलेमा की दुर्बलता नहीं। ईरान, अरब, से लेकर भारत, यूरोप, अमेरिका तक इस्लामी अलंबरदार केवल एक भाषा जानते हैं – फतवा, धमकी और हिंसा।

जितना लंबा समय याद करें, फतवों और धमकियों के सिवा कभी कुछ सुना नहीं गया। श्रीनगर से लेकर टोरंटो, मुलतान से ढाका, देवबंद, तेहरान और मोरक्को, नाइजीरिया तक केवल फतवे और धमकियाँ ही सुनाई पड़ती हैं। कहीं बुद्धि-विवेक, विचार, दलील के सहारे किसी बात पर कायल करने का प्रयत्न नहीं। दूसरों की छोड़ें, खुद मुसलमानों को भी तर्क से या व्यवहारिक लाभ समझा कर सहमत बनाने का कार्य उलेमा कभी नहीं कर पाते।

स्वामी रामदेव योग के लाभ बताकर लोगों को योगाभ्यास के लिए प्रेरित करते हैं। उलेमा योग के विरोध में क्या कहते हैं? बस एक फतवा, और धमकी, कि न माना तो फल भुगतने के लिए तैयार रहो! अवसर अलग-अलग होते हैं, किंतु कार्रवाई एक ही होती है: फतवा और हिंसा। चाहे मामला सामाजिक हो, पारिवारिक, बौद्धिक या राजनीतिक। हर जगह पहला और अंतिम उपाय बल-प्रयोग मात्र है।

इसलिए ध्यान दें – इस्लामी भंडार में कोई उपयोगी विचार या रचनात्मक कार्यक्रम नहीं। यह वैचारिक दिवालियापन है! उस की सारी किताबों, मकतबों, मदरसों और विधानों में विवेक विचार से किसी को सहमत करने की क्षमता नहीं है। ऐसी विचारधारा और मतवाद कितने दिन चलेगा? बम, पिस्तौल, तलवार और छुरे के बल पर कोई विचारधारा मनुष्यों के बीच सदैव नहीं चल सकती। तसलीमा ने सच कहा है: इस्लाम अतीत की बात हो चुका है। मुसलमानों को उस के घेरे से बाहर आ जाना चाहिए। यह दिशा देखने वाले मुसलमानों की संख्या दुनिया में बढ़ रही है।

'ॐ' से टकराव मोल लेकर उलेमा ने पुनः अपने मतवाद की दुर्बलता दिखा दी है। विवेकशील लोग इसे देखे बिना नहीं रह सकते। चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान।